राजस्थान पत्रिका

सम्पादकीय

अपने ही दुश्मन

भारत और पाकिस्तान के रिश्ते एक बार फिर कड़वाहट के दौर से गुजर रहे हैं। सब जानते हैं कि पाकिस्तान गलती पर है। सब जानते हैं कि पाकिस्तान ऐसी गल्तियां चला कर करता है और बार-बार करता है, फिर चाहे वह पाकिस्तान में आतंककारी प्रशिक्षण शिविर चलाने की बात हो या सीमा पर आतंककारियों की घुसपैठ कराने से लेकर भारत में अशांति फैलाने की बात। और तो और उसके अपने राजनेता और आला अफसर तक अब तो खुलकर अपनी ही हुकूमत के ऐसे षड्यंत्र का राजफाश कर रहे हैं। लेकिन उसकी हुकूमत शायद दिवंगत जुल्फिकार अली भुट्टो के भारत से एक हजार साल तक लड़ने के कथन से दुष्प्रेरित है। सवाल यह है कि पाकिस्तान की पाकिस्तान जाने, हम क्या कर रहे हैं? हमारी अपनी सरकारें क्या कर रही हैं? केन्द्र की भी और राज्यों की भी।

> घुसपैठ की कोशिश करने वालों को मौके पर ही गोली से उड़ा दें। लेकिन यदि वे घुस आएं और यहां आकर वारदात करें तो उससे ज्यादा गलती हमारी और हमारी सरकारों की है।

सांप की प्रकृति है डसने की लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं है कि सामने वाला इंसान अपना बचाव ही नहीं करे। पाकिस्तान तो अपनी आदत और हालात से मजबूर है। वह खुद इतने षड्यंत्रों से जूझ रहा है कि उनसे बचने के लिए वहां की हुकूमत हमसे भिड़ने के रास्ते ढूंढती है। प्रश्न यह है कि हम अपनी हिफाजत क्यों नहीं कर पाते? सालों हो गए, हमें अपनी सीमा की तारबंदी करते। न जाने कितनी बार हमारी सरकारें उन तारों में बिजली का करंट प्रवाहित कर चुकीं लेकिन घुसपैठ है कि रुकने का नाम ही नहीं ले रही। आखिर क्यों? क्या हमारी सीमा में आतंकियों को घुसने से रोकने का काम हमारा नहीं पाकिस्तान का है? यदि यह जिम्मा हमारा है, तब बात-बात में पाकिस्तान और वहां की सरकार को दोषी ठहराने का क्या अर्थ है? हम अपना काम करें। अपनी सीमा की रक्षा करें। उसमें घुसपैठ की कोशिश करने वालों को मौके पर ही गोली से उड़ा दें। लेकिन यदि वे घुस आएं और यहां आकर वारदात करें तो उससे ज्यादा गलती हमारी और हमारी सरकारों की है। उन सरकारों की जो अपनी राजनीति के लिए हमारी बहादुर फौजों को दुश्मन के सामने गोली चलाने से रोकती हैं।

सैनिकों को मानवाधिकार कानूनों के दायरे में लेना उनके अपमान से कम नहीं है। यदि सेना के जवान दुश्मन पर गोली चलाने से पहले अपने मुकदमेबाजी में फंसने की चिंता करने लगे तब तो हो गई देश की रक्षा। जब तक हम ही अपने दुश्मन रहेंगे, तब तक किसी और दुश्मन की जरूरत ही क्या है? सबसे पहले हमें मजबूत और स्पष्ट होना पड़ेगा। दुश्मन तो हमारी मजबूती देखकर अपने आप कमजोर हो जाएगा।

हो सकता है मैं आपके विचारों से सहमत न हो पाऊं फिर भी विचार प्रकट करने के आपके अधिकारों की रक्षा करूंगा। - वाल्तेयर

बात-करामात

सौन्दर्य बोध

वाह भारती, आप कमाल करते हैं। आपका सौन्दर्य बोध अद्भुत है। आपको सुन्दरता की बड़ी चिन्ता है। दिल्ली पुलिस को 'आप' सरकार के अधीन लाकर पहला काम सुन्दर महिलाओं की सुरक्षा करना चाहते हैं। बाकी सब जाएं भाड़ में। आपने अपने श्रीमुख से फरमाया है कि अगर राष्ट्रीय राजधानी में पुलिस व्यवस्था आम आदमी पार्टी की सरकार के पास हो तो दिल्ली की खूबसूरत महिलाएं रात को भी बिना डर के बाहर घूम फिर सकती हैं। भाई भारती , चलिए सुन्दर महिलाओं की सुरक्षा के लिए आप सिपाही लगा देंगे तो फिर बदसूरतों का क्या हाल होगा? यह मानसिकता है इस देश के सत्ताधारियों की। माना कि आप 'सुन्दरता' की सुरक्षा कर लेंगे लेकिन इससे पहले जरा अपना घर तो संभाल लीजिए। इसी लाजवाब सौन्दर्य सूक्ति पर आपकी होम मिनिस्टरनी ने क्या कहा है- 'सोमनाथ को सिर्फ सुन्दर महिलाओं की चिन्ता है। मैं दिखने में सामान्य हूं शायद इसलिए मुझसे बुरा बर्ताव हो रहा है। उन्हें मेरी (पत्नी की) सुरक्षा की चिन्ता नहीं जबकि सुन्दर स्त्रियों की सुरक्षा को लेकर गंभीर हैं।' अब आपके घर की तो आप ही जानें लेकिन एक जमाने में हम भी सौन्दर्य के पुजारी थे। कलियों के पीछे आवारा भंवरे की तरह मंडराते रहते थे। जैसे-जैसे समझ बढ़ी तब पता चला कि असली सुन्दरता चेहरे मोहरे में नहीं कहीं और छिपी रहती है। तब लगातार मेहनत करने वाली गरीब मजदूर सुन्दर लगने लगी जो दिन भर खट कर पति का बराबर हाथ बंटाती थी। तब वह पढ़ी-लिखी साधारण नैन नक्श वाली सुघड़ युवती भी अच्छी लगी जिसने अपना लाखों का पैकेज ठुकरा कर कच्ची बस्ती की पिछड़ी औरतों-बच्चियों का जीवन सुधारने का फैसला कर लिया। तब बूढ़ी दादी अद्भुत सौन्दर्यशाली लगने लगी जिसकी एक आंख बचपन में ही खराब हो गई थी और जो तपते बुखार में भी उठ कर पड़ोसी के बीमार बच्चे को संभालने चली जाती थी। अब तो लगता है कि आपका और आपके केजी साहब का एक मात्र एजेन्डा यही बचा रह गया है कि किसी तरह पुलिस को अपने बस में करो और फिर क्या है? इसके बाद तो किसी को कभी भी गिरफ्तार करवाया जा सकता है। वैसे भी एक सवाल तो उठता ही है कि जिस आदमी पर उसकी ब्याहता पत्नी ही घरेलू हिंसा का अक्षम्य आरोप लगा रही हो वह किसी और की सुरक्षा का ठेका कैसे ले सकता है? लेकिन लोक में कई लोकोक्तियां भी कही-सुनी जाती हैं- कुछ लोगों को घर की मुर्गी भी नहीं सुहाती पर पड़ोसी की बिना बघार लगी दाल पर भी जुबान लपलपाते हैं। सोम भाई, आपसे इतना ही निवेदन है कि सुन्दर महिलाओं की सुरक्षा की चिन्ता छोड़ो। यह नेक काम तो वे खुद, उनके परिजन या रिश्तेदार ही कर ही लेंगे। आप तो अपना घर संभालो। फिलहाल आप 'खिड़की एक्सटेंशन' की फिकर करो जहां आपने जमकर बवाल काटा था।

> **सुन्दर महिलाओं की चिन्ता छोड़ो। यह नेक काम तो वे खुद या उनके परिजन ही कर ही लेंगे। आप तो अपना घर संभालो।**

- राही

प्रत्यक्ष :कर्म/ फल

महासमर 2492

जानता हूं। पर' 'जानते हो किंतु मानते नहीं हो।' कृष्ण बोले, 'जो मरता है, वह शरीर है। हम शरीर नहीं हैं, आत्मा हैं। आत्मा का न संघटन होता है, न विघटन। वह अविकारी है। वह पंचभूतों से संघटित नहीं हुई, इसलिए उसका विघटन भी संभव नहीं है। हम में से ऐसा कोई नहीं है, जिसका अस्तित्व आत्मा के रूप में किसी काल में नहीं था अथवा भविष्य में किसी काल में नहीं होगा। और शरीर का क्या है, वह तो ऋतु में आए पुष्प के समान खिलता और मुरझा जाता है। कोई नहीं भी तोड़ता तो भी मुरझा कर टहनी से गिर जाता है। जिन राजाओं ने युद्ध नहीं किए, क्या उनका देहांत नहीं हुआ? जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है और जो मरता है, उसका पुनर्जन्म निश्चित है। आत्मा पुराना शरीर त्याग उसी प्रकार नया शरीर धारण करती है, जैसे शरीर पुराना वस्त्र त्याग नया वस्त्र धारण करता है। असत् की सत्ता नहीं हो सकती और सत् का अभाव नहीं हो सकता।'

'मैं क्या करूं केशव! हमारा शरीर वस्त्र के समान ही सही किंतु जिन्हें जीवित देखना चाहता हूं, जिन्हें इसी शरीर के रूप में जानता हूं, उनके प्राण हरण करने का कर्म कैसे कर सकता हूं?'

कृष्ण ने मुस्कराकर उसकी ओर देखा, 'यदि युद्ध विनाश है तो भी क्या यह तुम्हारी इच्छा से प्रस्तुत हुआ है? तुमने चाहा था कि युद्ध हो?' 'नहीं।' अर्जुन ने उत्तर दिया। 'जब विनाश तुम्हारी इच्छा से प्रस्तुत नहीं होता। जब विनाश तुम्हारी इच्छा से रुकता नहीं। तो तुमने यह कैसे मान लिया कि यह तुम्हारे ही कर्मों का फल है? तुम कर्म नहीं करोगे तो भावी यह नहीं होगी कुछ और होगी?'

अर्जुन कुछ चौंका। ऐसा नहीं लग रहा था कि वे लोग युद्धक्षेत्र में खड़े हैं और कृष्ण उसे युद्ध के लिए प्रेरित कर रहे हैं। कृष्ण तो कुछ और ही कह रहे हैं। वे युद्ध संबंधी बात नहीं कर रहे। वे उससे भिन्न कोई सत्य बता रहे हैं उसको। कह रहे हैं कि वह कर्म नहीं करेगा तो भी भावी वही रहेगी। पर तब कौन करेगा वह कर्म। अर्जुन युद्ध नहीं करेगा, उसका कोई भाई युद्ध नहीं करेगा, उसके शत्रु युद्ध नहीं करेंगे तो भी भावी वही रहेगी? तो कर्म कौन करेगा? 'तुम्हीं तो कहते हो कि हमें अपने कर्मों का फल मिलता है।' अर्जुन ने जैसे कृष्ण को उपालंभ दिया।

कृष्ण ने एक बार मुस्कराकर उसकी ओर देखा और फिर वल्गा संभाल ली। उन्होंने अश्वों को संकेत किया और रथ चल पड़ा। अर्जुन का ध्यान उस ओर गया किंतु उसने कुछ पूछा नहीं कि कृष्ण उसे कहां ले जा रहे हैं। उसका मन ऐसा हताश हो रहा था कि जैसे उसकी किसी भी विषय में कोई रुचि रह ही नहीं गई थी। उसे लगा कि कृष्ण रथ को यहीं रोके रखें अथवा कहीं और ले जाएं- इससे उसे कोई अंतर ही नहीं पड़ेगा। वह तो दोनों स्थितियों से प्रायः उदासीन ही था। कृष्ण रथ की गति बढ़ने नहीं दे रहे थे। रथ मंथर गति से चल रहा था जैसे कृष्ण और अर्जुन दोनों सेनाओं का निरीक्षण कर रहे हों।

'मैं कहता हूं कि कर्म का फल मिलता है।' कृष्ण ने बात आरंभ की 'किंतु क्या मैंने कभी कहा कि तुम्हें अपने कर्म का फल तुम्हारी इच्छानुसार मिलेगा। क्या मैंने कहा कि कर्म करो न करो, इच्छा करो और अपना मनोवांछित फल पा लो।'

क्रमशः **- नरेन्द्र कोहली**

जिन उपहारों की बड़ी आस लगी होती है वे भेंट नहीं किए जाते, चुकाए जाते हैं। - **फ्रेंकलिन**

पोलमपोल भायो | भाँत-भाँत का छै भर्‌या, नेता में किरदार / नाटक मण्डली में गजब, झूठाँ का सिरदार

जयपुर . शनिवार . 08.08.2015

स्पॉट लाइट

विधायिका में कामकाज : क्या आर्थिक दंड हो सकता है सदन ठप किए जाने का हल?

'नो वर्क, नो पे' ही काफी नहीं

वर्तमान मानसून सत्र समेत संसद के पिछले 12 सत्रों में चार सत्र ऐसे रहे हैं जबकि संसद में तय कार्यक्रम का 25 फीसदी भी काम नहीं हुआ। ऐसे में सवाल उठना लाजिमी है जब हमारे सांसद पूरा काम ही नहीं करते तो फिर उन्हें पूरा वेतन क्यों दिया जाए? इसी से जुड़ा सवाल है कि क्या जनप्रतिनिधि और वेतनभोगी कर्मचारियों को एक ही श्रेणी में रखना उचित कहा जा सकता है? प्रश्न यह भी है कि क्या वेतन कटौती का भय दिखाकर हम अपने जनप्रतिनिधियों से वह करा सकता हैं, जिसके लिए वे चुने गए हैं? अगर नहीं तो क्या हो सकता है विधायिकाओं में आए दिन नजर आने वाले हंगामे और शोरगुल का हल ? इसी पर पढ़िए आज के स्पॉटलाइट में जानकारों की राय :

असरकारी तो सामूहिक दंड ही होगा

पार्थ जे. शाह
अध्यक्ष, सेंटर फॉर सिविल सोसायटी

सांसदों की वेतन कटौती का जो प्रस्ताव है, उसे एक लोकप्रिय जनाक्रोश की तरह से समझना चाहिए। जनता में इसको लेकर गुस्सा है कि हम जिन संसदों को जनप्रतिनिधि बनाकर भेजते हैं, वे कितने गैरजिम्मेदार तरीके से संसद में व्यवहार करते हैं। इसके लिए जनता चाहती है कि इन सांसदों को अपने गैर-जिम्मेदार आचरण के लिए दंडित किया जाना चाहिए। पर दंड का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिसका सांसदों में डर हो। असर हो।

आर्थिक दंड काफी नहीं

लेकितन बात सिर्फ लोकप्रिय जनाक्रोश की ही नहीं है। संसद अगर ठप पड़ी है, कोई कामकाज नहीं हो रहा है तो यह चिंता का विषय सभी आम और खास के लिए है। यह सिर्फ आज की बात भी नहीं है। ऐसा कई सालों से हो रहा है। लेकिन 'काम नहीं तो वेतन नहीं' जैसा आर्थिक दंड संभवतः सांसदों पर कारगर नहीं हो सके। 'काम नहीं तो वेतन नहीं' का दंड वहां कारगर हो सकता है जहां कि इससे प्रभावित होने वाले कर्मी या व्यक्ति की आय वेतन पर निर्भर करती हो। ऐसे व्यक्ति से आर्थिक दंड का भय दिखाकर हम काम करा सकते हैं। उसको काम पर ला सकते हैं। पर सांसदों के साथ यह मामला है नहीं। सांसदों का वेतन उनकी आय का बहुत छोटा हिस्सा होता है। इसलिए वेतन कटौती का उन पर कोई खास असर होगा, ऐसा लगता नहीं है। इसलिए इसका कोई ऐसा निरोधात्मक उपाय सोचना होगा जो किन्हीं एक - दो अथवा दस-पच्चीस सांसदों को नहीं, सबको प्रभावित करे। आखिर संसद चले, यह जिम्मेदारी सत्तापक्ष या विपक्ष की नहीं सभी सांसदों की होना चाहिए। जब तक हम इस सामूहिक जिम्मेदारी के भाव से नहीं सोचेंगे तब तक समस्या का हल नहीं निकल सकता।

संसद का टर्म ही घटता जाए

होना यह चाहिए कि ऐसा कानूनी प्रावधान हो कि एक वर्ष में कुछ न्यूनतम दिन या घंटे तो संसद अवश्य ही काम करे। जैसे एक वर्ष में 120 दिन या फिर 800-900 घंटे तो संसद में कामकाज हो, ऐसा कानूनन अनिवार्य बनाया जाए। संसद कार्रवाई में कितने बिल पारित या खारिज होते हैं, कितने प्रश्न पूछे गए, प्रश्न काल कितना रहा, बहस कितनी हुई, यह सब प्रश्न सेकेंडरी हैं। इनसे संसद के कामकाज के गुणात्मक मूल्यांकन में बहुत सहायता मिलती भी नहीं है। मूल चिंता तो यही होना चाहिए कि संसद एक निश्चित समय अवधि जैसे एक वर्ष (या एक सत्र में) में कुछ निश्चित दिन या घंटे सुचारु रूप से कामकाज तो करे। ऐसा नहीं होने पर दंड का विधान भी कुछ सांसदों या सत्ता पक्ष अथवा विपक्ष तक सीमित न हो। दंड सभी को समान रूप से मिले। उदाहरण के लिए एक दंड यह हो सकता है कि अगर संसद एक साल में निश्चित दिनों या घंटों तक नहीं बैठती है तो फिर संसद की कुल समय अवधि पांच साल से घटाकर कुछ माह कम कर दी जाए! क्योंकि ऐसी संसद जो काम ही नहीं कर रही, उसको अधिक समय तक जारी रखने की जरूरत ही क्यों और किसे होना चाहिए? इसी तरह जो संसद लगातार दो साल या तीन साल तक न्यूनतम समय भी काम नहीं करे तो उसे कुछ अधिक दंड दिया जा सकता है। इस प्रकार का दंड संभव है कि सांसदों पर कारगर हो सके और उन्हें संसद चलने देने के लिए प्रेरित कर सके।

वेतन का सवाल गलत

किसी भी पार्टी को संसद ठप नहीं करना चाहिए। देश के हित में है कि संसद चले। पर इसका हल 'काम नहीं तो वेतन नहीं' जैसे प्रस्तावों में नहीं हो सकता। इसका एक ही हल है कि सभी दलों में आम सहमति हो कि संसद को चलने दिया जाए, जिसकी कोशिश नहीं हो रही।

एच के दुआ, राज्यसभा सांसद

...किस बात का वेतन

'काम नहीं तो वेतन नहीं' का सिद्धांत सभी पर लागू होता है तो सांसदों पर क्यों नहीं? पर वेतन कटौती का सांसदों पर शायद ही कोई असर हो। इससे ज्यादा असर तो इनको जो सुविधाएं और विशेषाधिकार मिलते हैं, उनमें कटौती किए जाने का असर होगा।

प्रो. त्रिलोचन शास्त्री, आईआईएम, बैंगलूरु

उनकी सेहत पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा

राम बहादुर राय
वरिष्ठ पत्रकार

संसदीय राजनीति का मंच संवाद का मंच होता है, उपद्रव का मंच नहीं होता। यदि कामकाज नहीं तो सांसदों को वेतन-भत्ते क्यों दिए जाएं, यह प्रश्न वर्तमान संसद में उपद्रव के बाद उठा है। लेकिन, ऐसा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के शासन काल में ही हुआ हो, यह सही नहीं है। हमारी राजनीति में इस महारोग की शुरुआत 1977 से हुई। तब पहली बार जनता पार्टी सत्ता में आई और कांग्रेस लोकसभा में विपक्ष में थी। राज्यसभा में कांग्रेस का पहले से ही बहुमत था। तब से ऐसे उपद्रव की शुरुआत हुई जो हमें 2015 में भी देखने को मिल रहे हैं। वर्तमान में भी राज्यसभा में सत्तारूढ़ दल का बहुमत नहीं है और लोकसभा में चंद सांसद कामकाज नहीं होने दे रहे हैं। यह गैर जिम्मेदाराना है और संसदीय राजनीति के दृष्टिकोण से कलंक है।

यह कारगर उपाय नहीं

सांसदों के कामकाज नहीं करने पर उनके वेतन और भत्तों में कटौती को कारगर उपाय नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि संसद में जो कामकाज ठप किए बैठे हैं और उपद्रव कर रहे हैं, वे सरकारी कर्मचारियों की स्थिति में नहीं हैं। उनकी आर्थिक स्थिति और मनःस्थिति कर्मचारियों की आर्थिक स्थिति और मनःस्थिति से भिन्न है। यदि पैसों की ही बात करें तो इन सांसदों को पांच साल का वेतन भी नहीं मिले तो इनकी सेहत पर कोई फर्क नहीं पड़ता बल्कि वे तो इसे राजनीतिक रूप से तोहफा मानेंगे और अपने कुर्ते पर तमगे के तौर पर लगाकर अपने-अपने क्षेत्रों में जाकर इसका प्रचार ही करेंगे। संसदीय कामकाज ठप करना, उपद्रव करना पार्टी का राजनीतिक फैसला है और उसका उपाय तकनीकी नहीं हो सकता। वेतन-भत्तों में कटौती तकनीकी उपाय ही है। कांग्रेस के इस राजनीतिक फैसले का जवाब भी राजनीतिक ही होना चाहिए। सत्तारूढ़ पक्ष तो इस मामले में बड़ी लकीर खींचने पर विचार करना चाहिए। प्रधानमंत्री जनता को संबोधित करते हुए बताएं कि संसद क्यों नहीं चल रही। सांसदों के वेतन-भत्तों में कटौती अनुपयोगी और हानिकारक ही होगी।

इन्हें भाड़े का प्रतिनिधि कहें

प्रो. जगदीप छोकर
एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स

हमें यह समझना होगा कि सांसद कर्मचारी नहीं होते, वे जनप्रतिनिधि होते हैं। जनप्रतिनिधि पैसे के लिए काम नहीं करते। इसलिए उनके संदर्भ में यह मांग करना कि वे अगर काम नहीं करें, तो उनके वेतन में कटौती की जाए, यह संसद, सांसद मंत्री, जनता और लोकतंत्र सभी की अवमानना के समान है। अगर ऐसा ही व्यवहार हमें अपने सांसदों के साथ करना है तो फिर उनको जनप्रतिनिधि कहने की जरूरत नहीं। यह और भी दुर्भाग्य की बात है इस तरह का प्रस्ताव खुद सांसद-मंत्रियों की तरफ से आ रहा है। इसका आशय यह है कि वे अपने को वेतनभोगी या दिहाड़ी मजदूर समझते हैं। क्या इसका अर्थ यह भी निकाला जाए कि वे जनप्रतिनिधि होने लायक नहीं?

> जिस दिन वे जनप्रतिनिधि की तरह सोचना व काम करना शुरू कर देंगे, उस दिन इस तरह के गतिरोध सामने आएंगे ही नहीं। पर वे सच्चे जनप्रतिनिधि तभी बन सकते हैं जब राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र हो।

एक वेतनभोगी जब काम पर रखा जाता है तो बातचीत का सबसे बड़ा मुद्दा होता है कि कितना वेतन मिलेगा? पर जब जनता अपने जनप्रतिनिधि का चयन करती है तो वेतन तो किसी ओर से मुद्दा ही नहीं होता। अगर हमारे सांसद और मंत्री वेतन के लिए काम करते हैं तो फिर इन्हें जनप्रतिनिधि के बजाय भाड़े के प्रतिनिधि कहना होगा। सवाल यह है कि वेतन कटौती नहीं फिर संसद में इस गतिरोध का हल क्या हो? इसके लिए हमें मूल में जाना होगा। संसद में गतिरोध इसलिए पैदा हुआ है क्योंकि हमारे जनप्रतिनिधि दरअसल जनप्रतिनिधि की तरह व्यवहार ही नहीं कर रहे। वे खुद के प्रतिनिधि या बहुत हुआ तो अपनी पार्टी के नेता के प्रतिनिधि की तरह काम करते हैं।

जनता करे सवाल तो क्या जवाब दें...

विजय गोयल
सांसद

सांसद घर से निकलकर संसद तक जाता तो है लेकिन चंद लोगों के हंगामे के कारण वह काम नहीं कर पाता। चार लोगों का दोष उसके सिर नहीं मढ़ा जा सकता। कर्मचारी हड़ताल करते हैं तो वे घर से ही नहीं निकलते।

अगर संसद नहीं चलेगी और लगातार बाधित होती रहेगी, वहां कोई कामकाज नहीं होने से लाखों-करोड़ों रुपए व्यर्थ चले जाएंगे तो जनता तो सवाल करेगी ही। इसका क्या जवाब दिया जाए कि सांसदों को न केवल जिस दिन काम नहीं किया उस दिन के भत्ते बल्कि वेतन भी क्यों दिया जाना चाहिए?

फर्क तो पड़ता ही है

सांसदों को अर्थदंड का विशेष फर्क नहीं पड़ता तो हाजिरी करने के लिए वे दफ्तर तक दौड़ नहीं लगाते। यदि फर्क नहीं पड़ रहा होता तो वेतन और भत्तों में बढ़ोतरी के प्रयास ही नहीं किये जाते। मेरा मानना है कि कम या ज्यादा लेकिन फर्क तो पड़ता ही है। फिर वेतन-भत्ते कटे या नहीं कटे या फिर कितना कटे? इस सवाल से अधिक महत्वपूर्ण है हमारा उत्तरदायित्व। हो सकता है कि कुछ सांसदों को फर्क नहीं पड़ता हो लेकिन कामकाज नहीं करने की स्थिति में वेतन-भत्तों की कटौती वास्तव में सांकेतिक है। वह तो उस जिम्मेदारी का अहसास कराने के लिए है, जिसके लिए उन्हें संसद में भेजा गया है।

सजा तो होनी ही चाहिए

मेरा मानना है कि संसद की कार्रवाई में भाग लेना बहुत ही महत्वपूर्ण है। एक या दो दिन की बात होती तो भी ठीक था लेकिन पूरे-पूरे सत्र में हंगामा हो रहा हो और कामकाज ठप पड़ा हो, यह ठीक नहीं लगता। इस संदर्भ में, इंडियन पार्लियामेंट्री ग्रुप की बैठक में मैंने ही सुझाव दिए हैं कि लोकसभा और राज्यसभा के नियम और प्रक्रिया पर दोबारा विचार करना ही चाहिए। सदन में किसी ने प्लेकार्ड दिखाया, उसका भत्ता तुरंत समाप्त हो जाए, कोई वेल में आया उसे स्वतः ही निलंबित मान लिया जाना चाहिए। बात आर्थिक हानि की नहीं बल्कि स्वयं पर अंकुश की है। खुद पर नियंत्रण को लेकर हमें ही तो सोचना पड़ेगा। यदि इस तरह के व्यवहार पर कार्रवाई की व्यवस्था हो गई तो लोग चिन्हित हो जाएंगे और उन पर अंकुश लग सकेगा। इसी संदर्भ में मेरा यह भी मानना है कि राज्यसभा में किसी भी क्षेत्र से लोग मनोनीत किए जाएं लेकिन जिन्हें मनोनीत किया जा रहा है, कम से कम उन्हें कार्रवाई में भाग तो लेना चाहिए। फिल्म उद्योग से आने वाली जया बच्चन भी तो हैं और वे कार्रवाई में भाग लेती हैं लेकिन अन्य क्षेत्रों के मनोनीत बहुत से लोग तो आते ही नहीं। उन पर भी इस तरह की व्यवस्था से अंकुश लग सकेगा। कर्मचारियों के काम लंबित पड़े रहते हैं, उन्हें कोई कुछ भी कहने वाला नहीं है। लेकिन, हमें हमारे कामकाज के तौर पर आंका जाता है। सांसदों को अपने क्षेत्र के लोगों से मिलना पड़ता है। अपने कामकाज का हिसाब देना पड़ता है। लोग उन्हें उनके कामकाज के हिसाब से चुनते हैं।

पाठक पीठ

इक्कीस

पाकिस्तान की फौज आतंकियों की आड़ में भारत की सरजमीं पर आए दिन गोले दाग रही है। निर्दोष नागरिक और जवान मारे जा रहे हैं। लेकिन हम इसका माकूल जवाब देने में हिचक रहे हैं। उसके जबरन कब्जाए हुए आधे कश्मीर को वापस लेने की कभी कोशिश तक नहीं करते। ऐसे हालात में चीन को भला क्या जवाब देंगे, जो हमसे हर मामले में इक्कीस है।

- कुशल करण, जोधपुर

तरक्की

एक सशक्त तथा विकसित राष्ट्र और सभ्य समाज का भविष्य तभी उज्जवल रहता है जब उसकी युवा पीढ़ी संस्कारवान हो। उसके सतत् तथा सर्वांगीण विकास के बिना किसी भी देश के स्वर्णिम भविष्य की कल्पना करना बेमानी होगी। जबकि हम बच्चों के प्रति सामूहिक दायित्व की लगातार अनदेखी कर रहे हैं। यह हमारी आधी-अधूरी तरक्की का स्याह पहलू माना जाएगा।

- सुरेश चन्द, कोटा

विडम्बना

सेना भर्ती परीक्षा का पेपर लीक, पॉलिटेक्निक परीक्षा का पर्चा आउट, आरपीएससी की भर्ती परीक्षाओं में घपले ही घपले, बोर्ड परीक्षा में भी धांधली, आखिर यह क्या हो रहा है? सभी परीक्षाएं संदेह के घेरे में क्यों आ रही हैं। एआईपीएमटी परीक्षा सर्वोच्च न्यायालय के दखल पर कुछ शर्तों के साथ ढाई माह में दोबारा करानी पड़ी। बेरोजगारों की यह कैसी विडंबना है?

- शबनम, बून्दी

सार्थकता

छात्र संघों ने प्रदेश और देश को कई सफल नेता दिए हैं लेकिन कुछ सालों से इन चुनावों का स्वरूप बिगड़ गया है। छात्र नेताओं को हमेशा विद्यार्थी हितों और शिक्षण संस्थानों की गरिमा का ध्यान रखना चाहिए। विद्यार्थी और शिक्षकों के बीच संबंध न बिगड़ें। वे स्वस्थ सोच के साथ सकारात्मक राजनीति के लिए निस्वार्थ भाव से काम करेंगे तभी इन चुनावों की सार्थकता है।

- शैलेश सोमानी, जयपुर

सप्ताह का श्रेष्ठ पत्र

पाठकों की वैचारिक ऊर्जा को प्रोत्साहित करने के लिए प्रति सप्ताह एक सर्वश्रेष्ठ पत्र का चयन किया जाएगा। सप्ताह के दौरान प्राप्त पाठकों के पत्रों में से इसे चुना जाएगा। चयन का आधार मुख्यतः विषय-वस्तु, भाषा-शैली और मौलिक-विचार होंगे। चयनित पत्र की घोषणा प्रति शनिवार को की जाएगी। अपना पूरा पता लिखें।

सर्वश्रेष्ठ पत्र विजेता को 500/- रुपए की पुस्तकें भेंट की जाएंगी।

विजेता पत्र लेखक

05 अगस्त को पाठक पीठ में प्रकाशित पत्र 'नैतिकता का नाटक' की लेखक - सावित्री चौधरी, जयपुर